International Research Journal of Humanities, Language and Literature
Vol. 3, Issue 6, June 2016 IF- 3.558 ISSN: (2394-1642)
© Associated Asia Research Foundation (AARF) Publication
Website: www.aarf.asia Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

भारतीय ऋषियों की सार्वभौमिक (वैश्विक) विचारधारा

डॉ॰ जगतनारायण

माँ दुर्गानगर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

शोध-आलेख सार

इस विचारधारा के अंतर्गत कोई एक धर्म नहीं बल्कि सभी धर्मश्रेष्ठ हैं। उनकी अवधारणाओं, विचारधाराओं तथा उपासना पद्धतियों में अंतर हो सकता है लेकिन उनकी मूल भावनाएं समान हैं । आज जरूरत सभी धर्मों को एक-दूसरे के करीब लाने की है । अनेक संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं लेकिन हर व्यक्ति को भी अपने स्तर पर इस दिशा में कार्य करने की जरूरत है । व्यक्ति को सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना चाहिये। भारत में सदैव ही धार्मिक और वैचारिक सहिष्णुता रही है जो कहीं और देखने को नहीं मिलती । यहां तक कि नास्तिक दर्शन को मानने वाले चार्वाक को भी यहां ऋषि की संज्ञा दी गई है । विश्वभर में स्त्रियों को भी अधिक सशक्त और सक्रिय बनाये जाने पर बल देने की आवश्यकता है । स्त्री शक्ति के विकास के लिये हर संभव प्रयास किये जाने चाहिए । आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनने की हर सुविधा और अवसर दिये जाने चाहिये।

मुख्य-शब्द : वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय व्यक्ति, परिवार, समाज ।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तेषाम् ।

समानं मन्त्राभि मन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा व-सुसहासति ।।[1]

अर्थात् हम इक्ट्ठे चलें, एक जैसे बोलें और हम सबके मन एक जैसे हो जावें - यह भावना प्राचीन काल से ही चली आ रही है । इसलिए यहाँ राजा और रंक, धनवान और संत सब एक साथ बैठकर भोजन करते हैं । यहाँ के तत्त्व चिन्तकों ने बिना किसी भेदभाव के मानव मात्र अर्थात् प्राणिमात्र के कल्याण की कामना की है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ।।[2]

अर्थात् संसार में सब सुखी रहें, सब निरोगी या स्वस्थ रहें, सब भद्र अर्थात् कल्याण देखें और विश्व में कोई भी दुःखी न हो।

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम् ।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

अर्थात् यह अपना है यह पराया है ऐसी गणना तो छोटे मन वाले करते हैं । उदार अर्थात् बड़े मन वालों के लिए तो सारी पृथ्वी ही अपना परिवार है ।

भारतीय प्राचीन परम्परा में यह एक व्यापक मानव-मूल्य है । व्यक्ति से लेकर विश्व तक इसकी व्याप्ति है - व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा सम्पूर्ण विश्व इसकी परिधि में समाहित है । यह वैयक्तिक मूल्य भी है, सामाजिक मूल्य भी है, राष्ट्रीय मूल्य भी है और अंतर्राष्ट्रीय मूल्य भी, राजनीतिक मूल्य भी है और नैतिक मूल्य भी, धार्मिक है और प्रगतिशील मूल्य भी और यदि इन सबका एक शब्द में समाहार करना चाहें तो हम कह सकते हैं कि यह मानवीय मूल्य है । इस भारतीय प्राचीन ज्ञान मूल्य को सच्चे मन से अपनाए बिना मानवता अधूरी है, मनुष्य अधूरा है, धर्म और संस्कृति अधूरे हैं तथा राष्ट्र और विश्व भी अधूरा और पंगु हैं । यह मनुष्य की, मानव समाज की, राष्ट्र की अनिवार्यता है । यदि हम विश्व को श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो हमें विश्वबंधुत्व की भावना को आत्मसात् करना ही होगा ।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूत्र भारतीय मनीषियों ने जिस उदार मानवतावाद का सूत्रपात किया उसमें सार्वभौमिक कल्याण की भावना से है । यह देश-कालातीत अवधारणा है और पारस्परिक सद्भाव, अन्तः विश्वास एवं एकात्मवाद पर टिकी है । 'स्व' और 'पर' के बीच की खाई को दूर कर यह अवधारणा 'स्व' का 'पर' तक विस्तार कर उनमें अभेद की स्थापना का स्तुत्य प्रयास करती है ।

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को राष्ट्रवाद का विरोधी मानने की भूल की जाती रही है । जिस प्रकार उदार मानवतावाद का राष्ट्रवाद से कोई विरोध नहीं हैं । उसी प्रकार वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का भी राष्ट्रवाद से कोई विरोध नहीं हैं । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा शाश्वत तो है ही, यह व्यापक एवं उदार नैतिक-मानवीय मूल्यों पर आधारित भी हैं। इसमें किसी प्रकार की संकीर्णता के लिए कोई अवकाश नहीं हैं । सहिष्णुता इसकी अनिवार्य शर्त है । निश्चय ही आत्म-प्रसार, 'स्व' का 'पर' तक विस्तार स्वयं को और जग को सुखी बनाने का साधन है । वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप समय और दूरी के कम हो जाने से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के प्रसार की आवश्यकता और भी बढ़ गई है । किसी देश की छोटी-बड़ी हलचल का प्रभाव आज संसार के सभी देशों पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है । फलतः समस्त देश अब यह अनुभव करने लगे हैं कि पारस्परिक सहयोग, स्नेह, सद्भाव, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और भाईचारे के बिना उनका काम न चलेगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना आदि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के ही नामान्तर रूपान्तर है ।

इन राजनीतिक संगठनों से यह तो प्रमाणित होता ही है कि विश्व के बड़े से बड़े और छोटे से छोटे राष्ट्र पारस्परिकता और सह अस्तित्व की आवश्यकता अनुभव करते हैं तथा इन अवधारणाओं के बीच 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में निश्चय ही विद्यमान थे ।

योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने भी सार्वभौमिकता के विषय में कहा है कि -

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्ना, सार्वभौमा महाव्रतम् ।।

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और यम-नियम इनसे मानव का इह लोक और परलोक सुधरता है । जाति, देश, काल आदि को त्याग कर सार्वभौमिकता महाव्रत कहा गया है ।

यजुर्वेद में भी विश्व बन्धुत्व की भावना को प्रस्तुत किया गया है-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ।।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूत् विजानतः ।

तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।।[3]

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यम् अधिगच्छति ।।

अर्थात् सब चराचर पदार्थों एवं प्राणियों में परमात्मा की व्यापकता को और परमात्मामें सब पदार्थों एवं प्राणियों के आश्रय को समान भाव से देखता हुआ अर्थात् सर्वत्र परमात्मा की स्थिति का अनुभव कर सर्वदा उसी का ध्यान करता हुआ परमात्मा का उपासक मनुष्य परमात्मसुख अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । 'वसुधैव कुटुम्बकम्'[4] की उदात्त भावना से अनुप्राणित वेदों में भौगोलिक भेद से विभक्त किसी भूखण्ड अथवा देशविशेष की संकीर्णता सीमा को राष्ट्र की संज्ञा नही दी गई है, प्रत्युत वेदों में यह 'सार्वभौम सत्ता' वाचक है ।[5] वैदिक ऋषियों ने मानव समाज के लिए एक आदर्श बृहदराष्ट्र की कामना की थी ।[6] उनका यह दृढ़ विश्वास है कि सम्पूर्ण भूमि विश्वम्भरा वसुधानी तथा सबको आश्रय प्रदान करने वाली है ।[7] यही विविध भाषा-भषी एवम् अनेक धर्मावलम्बी जनसमूह को धारण करती है ।[8] अत: वैदिक राष्ट्र की इस परिकल्पना से ही उनकी वैश्विक दृष्टि का शुभारम्भ हो जाता है । इस राष्ट्र की उत्तमता की सुरक्षा के लिए भी वे चिन्तित थे, इसी लिए उन्होंने यह उद्घोष किया कि सत्य, बृहत् (विकास) ऋत (निश्चित नियम, या सत्य) उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म (मन्त्र) तथा यज्ञ (पवित्र कर्म) ही अपनी राष्ट्र भूमि को सुरक्षित करते हैं ।[9] सुविधानुसार विभिन्न भाषाओं को एवं अभीष्ट धर्म (ईश्वर) की उपासना करते हुए भी समग्र राष्ट्र अर्थात् विश्व को अपने घर के समान समझने वाले वैदिक ऋषि उसके ऐश्वर्य की कामना करते थे।[10] वे राष्ट्र की समृद्धि स्थैर्य एवं सर्वविध कल्याण के लिए अनेक देवताओं से प्रार्थना ये भी करते थे ।[11] यही नहीं उन्होंने राष्ट्र की सर्वथा अभिवृद्धि के लिए 'अभीवर्तामणि में' देवत्य की परिकल्पना कर उसकी स्तुति में एक सुक्त समर्पित किया तथा राष्ट्र के सर्वविध कल्याण की कामना की।[12]

सम्पूर्ण विश्व को एक राष्ट्र की दृष्टि से देखने वाले तपोनिष्ठ वैदिक ऋषियों और मनीषियों का चिन्तन आत्मकेन्द्रित नहीं था, प्रत्येक वे अखिल भूतल पर रहने वाले समग्र प्राणियों के सर्वाधिक कल्याण और सुख की मङ्गल कामना करते थे । वेद में पदे-पदे दृष्टिगोचर होने वाली 'सर्वजनहिताय' और 'सर्वजनसुखाय' की भावना में उनकी वैश्विक दृष्टि परिलक्षित होती है ।[13] ऋग्वेद एवम् अथर्ववेद के शान्ति-सूक्त इसके उदाहरण हैं जिनमें सभी के लिए सार्वधिक शान्ति की कामना की गई है।[14] वैदिक ऋषियों के अनेक मंत्रों में स्पष्टत: यह दृष्टि अभिव्यक्ति हुई है । उदाहरणार्थ ऋषि ब्रह्म की इस उक्ति "बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम्"[15] अर्थात् यह विशाल पृथिवी हमारी माता और बन्धु हैं, में स्फुट रूप से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और विश्वबन्धुत्व की भावना निहित है । वे सम्पूर्ण पृथिवी को जनयितृ

माता के रूप में देखते थे[16] तथा इसे सद्भावना से युक्त मानते थे ।[17] उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि यथोचित निवास स्थान में रहने वाले विविध भाषा-भाषी तथा नाना-धर्मावलम्बी जन इस पृथिवी पर निवास करते हैं ।[18] अतः वे निखिल भूमण्डल को एक माता के रूप में तथा स्वयं को उसके पुत्र के रूप में देखते थे ।[19] उनकी यह भी कामना थी कि हम सभी अर्थात् सभी मानव इस पृथिवी पर रोगरहित और स्वस्थ रहें[20] तथा यह भूमि हमें ऐसा ही प्रेम करें जैसे पिता पुत्र को करता है ।[21] वैश्विक दृष्टि रखने के कारण ही वैदिक ऋषि विश्ववरणीया मातृभूमि से सभी की रक्षा करने,[22] सभी को निष्कण्टक व सुखद निवास देने[23] तथा समग्र विश्व के मनुष्यों के लिए कल्याणकारी होने के लिए प्रार्थना करते थे।[24] यही नहीं वे पृथिवी से सम्पूर्ण मनव जाति के त्रिविध (दैहिक, दैविक, भौतिक) सुखों की कामना भी करते थे ।[25]

वैदिक ऋषि आत्मसुख की चिन्ता न करते हुए अखिल प्राणियों के सर्वविध हित की कामना करते थे, जिसमें उनकी विश्व-कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है । एकत्र ऋषि दिशापालक देवों से निखिल जगत् वहाँ रहने वाले लोगों और गाय आदि पशुओं के कल्याण की कामना करते हैं ।[26] तथा उनकी यह प्रबल अभिलाषा है कि सभी के लिए सब कुछ कल्याणकारी और ऐश्वर्ययुक्त हो ।[27] एक सुक्त में ऋषि शान्तति ने भी विश्वजित् देवों से सभी मनुष्यों[28] में पशुओं धन आदि की रक्षा के लिए प्रार्थना की है । अन्यत्र इन्द्र देव से इस विशाल संसार को सुख देने की कामना की गयी है ।[29]

इसी प्रकार ऋषि शशकर्ण एक मन्त्र में अश्विनौ देवता से सम्पूर्ण विश्व की और सबके शरीर की रक्षा करने की अभ्यर्थना करते हैं ।[30] एकत्र ऋषि गोपथ द्वारा सभी के गायों अश्वों और मनुष्यों के कल्याण हेतु रात्रि देवता की प्रार्थना की गयी है ।[31] वैदिक ऋषियों की ऐसी मान्यता रही है कि सभी मनुष्यों के लिए धन आवश्यक है, अतः उन्होंने इन्द्र से यह कहते हुए प्रार्थना की है कि - "तुम्हारे द्वारा दिये गये महान् धन का संसार के सभी मानव उपयोग करते हैं; "अतः हम सब के लिए स्पृहणीय धन प्रदान करें।[32] वे सभी के लिए प्रभूत धन की कामना इसलिए करते थे, क्योंकि उनकी ऐसी चिन्तना थी कि 'इस भूमि पर सभी मनुष्य अपने ज्ञान और अन्न से जीवित रहते हैं[33] और इसके लिए धन आवश्यक है । वैदिक ऋषियों की इन अभ्यर्थानाओं में सर्वात्मना विश्व के मानव समुदाय के कल्याण की भावना प्रतिध्वनित होती है, जो उनके वैश्विक दृष्टि का परिचायक है ।

वैदिक ऋषि सम्पूर्ण भूमण्डल पर निवास करने वाले समग्र मानव जाति के सुखद एवं स्वस्थ जीवन की कामना करते थे । एतदर्थ वे देवों से ऐसी प्रार्थना करते थे कि इस भूमि पर हम सबके लिए मंगलकारी शुद्ध वायु तथा सुखद[34] और स्वच्छ (शुद्ध) जलधारा प्रवाहित

हो ।[35] सम्भवतः इसी लिए उन्होंने विश्व के मानव समुदाय का आह्वान किया था कि 'हे लोगों' । इस महान् जल रूप ब्रह्म को जानो जो पृथिवी और अन्तरिक्ष में ही व्याप्त नहीं हैं, प्रत्युत सर्वत्र व्याप्त है । इसी से औषधियाँ भी जीवित रहती हैं[36] तथा यही स्थावर-जंगम व समग्र भूतों का आधार है,[37] इतना ही नहीं सभी प्राणियों के जीवन के लिए वे द्युलोक और पृथिवी लोक के साथ-साथ सम्पूर्ण संसार के स्थैर्य की भी कामना करते थे ।[38] इस जगत् प्रपञ्च की सृष्टि हेतु । संवत्सर-चक्र के विषय में भी विचार करते थे, जिसमें यह समग्रलोक अधिष्ठित है ।[39] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व समुदाय के स्वस्थ-जीवन के लिए आवश्यक तत्त्वों, यथा-वायु जल वातावरण आदि की शुद्धता (अर्थात् प्रदूषण-साहित्य) के प्रति उनकी चिन्ता में जहाँ एक ओर वैश्विक पर्यावरण की शुद्धता की दृष्टि निगूहित हैं, वहीं दूसरी और सम्पूर्ण मानव जाति के मंगल की भावना भी अन्तर्निहित है ।

आधुनिक युगीन मानव की भांति वैदिक ऋषियों की दृष्टि कथमपि संकीर्ण प्रतीत नहीं होती, क्योंकि वे अखिल विश्व में एक ही तत्त्व को परिव्याप्त देखते थे ।[40] उसी कारण से उनका यह नारा था कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की सर्वथा रक्षा करें[41] कोई किसी से द्वेष न करें[42] चाहे किसी को देखते हों या न देखते हों सभी के प्रति सद्भावना रखें तथा सभी को मित्र-भाव से देखें ।[43] ऋषियों की सर्वत्र अभयभावना में भी वैश्विक दृष्टि द्रष्टव्य है ।[44] उनकी ऐसी धारणा थी कि सभी दिशायें शत्रुरहित हों । तथा रात-दिन-मित्र-अमित्र सभी भयरहित हों[45] और समग्र दिशायें हम सब के लिए मित्रवत् अनुकूल हों अर्थात् अखिल विश्व भय से मुक्त हो,[46] क्योंकि वे सभी प्राणियों के अभय जीवन की कामना करते थे।[47] वे तो किसी भी जीव की उपेक्षा नहीं चाहते थे ।[48] इसके अतिरिक्त ऋग्वेद और अथर्ववेद के संज्ञान सूक्तों में अभिव्यक्त सभी मानवों के क्रिया-कलापों, मन-बुद्धि-विचारों आदि में पूर्ण सामंजस्य की भावना में भी विश्व-मानव समुदाय के प्रति सद्भाव, सौमनस् एवं सह अस्तित्व का भाव अन्वेष्टव्य है ।[49] अथर्ववेद के सामनस्य-सूक्त में भी मनुष्यों में परस्पर अनुराग, अनुकूलता, सद्भावना, सद्व्यवहार स्नेह, सौहार्द आदि की जो शिक्षा दी गयी है, वह इस भूधरा पर विद्यमान समग्र मानव के लिए सर्वथा अनुकरणीय है, जिसे विश्वमैत्री, विश्वबन्धुत्व, विश्वकल्याण, विश्व एकता आदि का महामंत्र माना जा सकता है, यथा -

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेष कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या ।।

अन्नव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञान पुरुषेभ्यः ।।

देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातःसौमनसो वो अस्तु ।।[50]

सत्प्रवृत्त और लोककल्याण की भावना वैदिक विचारधारा का मूल है । सम्भवतः इसी सर्वजन-कल्याण की भावना ने वैदिक आर्यो को ऐसी बुद्धि प्रदान की जिससे उत्प्रेरित होकर उन्होंने हार्दिक रूप से (मनसा) कल्याण चाहने का संकल्प किया । उनकी सर्वजन-कल्याण की भावना इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई है[51] कि "हे सविता देव ! हम सब के समस्त अमंगल को दूर करें तथा सर्वविध मंगल को हम सबकी ओर प्रेरित करें । वैदिक ऋषियों का यह आदर्श था कि वे सब को समान भाव से देखते थे,[52] तथा सभी के प्रिय होने की कामना करते थे, चाहे कोई छोटा हो या बड़ा ।[53] इस प्रकार वे सभी का कल्याण चाहते थे ।[54] इतना ही नहीं, वैदिक ऋषियों के वैश्विक दृष्टि-सम्बन्धी उदात्त चिन्तन की पराकाष्ठा उनकी उस भावना में दृष्टिगोचर होती है जहाँ उन्होंने समग्र विश्व को एक रूप एवम् एक नीड (अवास) के रूप में देखा है ।[55] उनकी यह दृष्टि सम्पूर्ण विश्व में ऐक्य-स्थापना एवं विश्वमानवतावाद की दृढ़ाधार-भूमि है और वैदिक संस्कृति का मूल भी । वैदिक ऋषि तो सदैव कल्याण-मार्ग पर चलने की तथा अशिव से दूर भगाने की कामना करते थे ।[56] उनमे तो समस्त जगत् को 'आर्य' बनाने की दृढ़ धारणा बद्धमूल थी ।[57]

इनके अतिरिक्त स्तुतिपरक मन्त्रों में प्रायः सर्वत्र प्रयुक्त 'नः' अस्मान्, अस्मभ्यम् वयम् इत्यादि पदों के मूल में भी वैदिक ऋषियों को विश्व कल्याण-भावना प्रदर्शित होती है, यथा - "भद्रं भवाति नः पुरः[58] वेदो और ब्राह्मण ग्रंथों में प्रयुक्त 'लोकाः भुवनानि आदि शब्दों में भी ऋषियों की वैश्विक दृष्टि का ज्ञान होता है । मन्त्रों में प्रयुक्त सभी लकारों के उत्तम-पुरुष बहुत वचन के क्रियापदों में भी उनकी यह दृष्टि अन्तर्निहित प्रतीत होती है ।[59] उन्होंने देवताओं नहीं, प्रत्युत विश्व में रहने वाले सभी मनुष्यों के लिए है ।

इस प्रकार उपर्युक्त वैदिक वचनों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि उस सुदूर काल में ही भारतीय ऋषियों और मनीषियों का सार्वभौम चिन्तन रहा है ।[60] उनके इसी चिन्तन में उनकी वैश्विक दृष्टि निहित है । "ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्"[61] तथा 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नोवानुपश्यति" प्रभृति सार्वभौमिक सत्य के उद्घोषक

वैदिक ऋषियों की सर्वथा वैश्विक दृष्टि थी, इस बात में लेशमात्र भी सन्देह का अवकाश नहीं है ।[62]

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।

तत्र को मोहः कः एकत्वमनुपश्यतः ।।

निष्कर्ष :

बंधुत्व की भावना, करुणा, प्रेम और भ्रातृत्व ही मानव अधिकारों की सुरक्षा की कुंजी है । इन्हीं मानवीय गुणों से अधिक सभ्य मानव विकसित होगा और गरीबी, जाति, धर्म, ऊँच-नीच तथा अन्य आधारों पर होने वाले मानव अधिकार हनन प्रभावी रूप से रोका जा सकेगा । विभिन्न भाषाओं को बोलने और विभिन्न क्षेत्रों में रहने के बावजूद सभी एक है । सिर्फ पैसा और भौतिक समृद्धि जीवन में सुख और मन की शांति नहीं दे सकते हैं । केवल इससे ही ज्ञान नहीं मिलता । मन की शांति और सुख प्राप्ति के लिये मनुष्य को आध्यात्मिकता के साथ मानव मूल्यों को आत्मसात करना होगा ।

जिन देशों में भौतिक समृद्धि है और श्रेष्ठतम भौतिक सुविधाएं उपलब्ध हैं वहां मानव के आंतरिक जीवन में गुणवत्ता नहीं है । विशेषकर युवा पीढ़ी भटकी हुई हैं । ईर्ष्या, द्वेष और अलगाव के चलते जीवन में कभी सच्चा सुख नहीं आ सकता । सच्चे सुख के लिए करुणा का भाव सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं । इसी से परिवार-समाज में सच्चा सुख व समृद्धि आ सकेगी । इसलिये केवल आर्थिक और भौतिक उन्नति नहीं, इन मानवीय गुणों के विकास पर हमें अधिक ध्यान देना चाहिये । व्यक्तिगत स्वतंत्रता बहुत मूल्यवान है जो सृजनशीलता के विकास के लिये अनिवार्य हैं । इसके बिना कोई भी समाज या समुदाय रचनात्मक और सृजनशील नहीं हो सकता । भारत में व्यक्तिगत स्वतंत्रता है और इसीलिये यहां सृजनशीलता और लोकतंत्र बहुत सफलतापूर्वक काम कर रहे हैं । भारत अकेला ऐसा देश है जहां सदा से पूरे विश्व को एक परिवार माना गया है । अहिंसा का संदेश यहीं से उपजा और महात्मा गांधी ने इसे सफलतापूर्वक अपनाया ।

इस विचारधारा के अंतर्गत कोई एक धर्म नहीं बल्कि सभी धर्मश्रेष्ठ हैं। उनकी अवधारणाओं, विचारधाराओं तथा उपासना पद्धतियों में अंतर हो सकता है लेकिन उनकी मूल भावनाएं समान हैं । आज जरूरत सभी धर्मों को एक-दूसरे के करीब लाने की है । अनेक संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं लेकिन हर व्यक्ति को भी अपने स्तर पर इस दिशा

में कार्य करने की जरूरत है । व्यक्ति को सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना चाहिये।

भारत में सदैव ही धार्मिक और वैचारिक सहिष्णुता रही है जो कहीं और देखने को नहीं मिलती । यहां तक कि नास्तिक दर्शन को मानने वाले चार्वाक को भी यहां ऋषि की संज्ञा दी गई है । विश्वभर में स्त्रियों को भी अधिक सशक्त और सक्रिय बनाये जाने पर बल देने की आवश्यकता है । स्त्री शक्ति के विकास के लिये हर संभव प्रयास किये जाने चाहिए । आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनने की हर सुविधा और अवसर दिये जाने चाहिये ।

संदर्भ सूची----------

[1]. ऋग्, 10/191/2/4

[2]. गुरु पु०, 2/35/51

[3]. यजु० 40/6-7

4. गरु० पु० 2.35.51 : सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ।।

विक्रमोव०, 5.25 : सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।

सर्वः कामासवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ।।

[5]. अथर्व०, 2.4.2

[6]. वही, 3.8.1 : अथास्मभ्यं वरुणो वायुरग्निर्बहद् राष्ट्र सवेश्यं दधातु।

[7]. वही, 12.1.6 : विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।।

[8]. वही, 12.1.45 : जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।

[9]. अर्थ०, 12.1.1 :सत्य बृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति ।

[10]. वही, 12.1.45 (सम्पूर्ण यन्त्र)

[11]. वही, 6.87.1-2;13.1.3510.10.2; वही, 7.35.1 : ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातम्।।

[12]. वही, 1.29.1 (सम्पूर्ण सूक्त)

[13]. ऋ० 1.909; वही, 10.165.2; यजु०, 36.9; अथर्व० 19.9.6;6.27.1;2.10.1;19.8.7;16.4.6; 19.9.14 : सर्वमेव शमस्तु नः ।

[14]. ऋ० 7.35 (सम्पूर्ण सूक्त); अथर्व०, 19.9.10.11 (सम्पूर्ण सूक्त) ।

[15]. अथर्व० 9.10.12

[16]. अथर्व०, 6.12.2 : भूमिर्मातादितिर्नो जनित्रं .....।

[17]. वही, 11.1.8 ..... पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।

[18]. वही, 12.1.45 : जन बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।

[19]. वही, 12.1.12 : माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्याः .....

[20]. वही, 12.1.62 : उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसुताः ।

[21]. वही, 12.3.12 : पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्य न.....

[22]. वही, 12.3.11 : सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य गोपा अभि रक्ष.....।

[23]. ऋ० 1.22.15; यजु०, 35.2136.13; अथर्व०, 18.2.19 : स्योनास्मै भव । पृथिव्यनृटक्षरा निवेशनी । यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ।

[24]. अथर्व०, 12.1.32 : स्वस्ति भूमे नो भव ।

[25]. वही, 7.6.4 : सा नः शर्म त्रिवरुथं नि यच्छात् ।

[26]. वही, 1.31.4 : स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः ।

[27]. वही, 1.31.4 : विश्वं सुभूतं सुविदत्र नो अस्तु.....।

[28]. वही, 6.107.2 : विश्वजित् द्विषाच्च सर्व नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः सवम् द्रष्टव्य सम्पूर्ण सूक्त (6.107)

[29]. वही, 20.137.10; ..... विभुमदभ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः

[30]. ऋ०, 8.9.11; अथर्व०, 20.141.1 : यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनुपा ।

[31]. अथर्व०, 17.47.9 : गोभ्यो नः शर्म यच्छज्ञश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ।

[32]. ऋ० 8.45.42; अथर्व०, 20.43.3 : यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पाह तदा भर।

[33]. अथर्व०, 12.1.22 : भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।

[34]. वही, 12.3.12 ..... शिवा नो वाता इव वान्तु भूमौ ।

[35]. वही, 12.1.30 : शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।

[36]. वही, 1.32.1 : इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदष्यिति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि प्राणन्ति वीरुधः ।।

[37]. वही, 1.32.2 : आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद् वेधसो न वा ।

[38]. ऋ०, 10.173.4; अथर्व०, 6.88.1 : ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् द्रष्टव्य तै० ब्रा०, 2.4.2.8 भी एवं ऋ० 10.173.5; अथर्व० 6.88.23 भी ।

[39]. ऋ० 1.164.13; अथर्व०, 9.9.11 : पञ्चारे चक्रे परिवर्तनमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानी विश्वा । द्रष्टव्य अथर्व०, 9. 9.14 भी ।

[40]. ऋ० 1.164.4610.114.5; यजु० 31.18;32.1;32.8;32.3;40.1 इत्यादि

[41]. ऋ० 6.75.14;यजु०, 29.51; तै०, सं० 4.6.6.5 : पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।

[42]. अथर्व०, 12.1.18, 23-25 : मा नो द्विक्षत कश्चन ।

[43]. वही, 17.1.7 : यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि...।

[44]. यजु० 36.18 : मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

[45]. अथर्व०, 19.14.1 : असपत्नाः प्रदिशे मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ।

46. वही, 19.15.5-6 : अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे में ।

अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।।

अभय मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।

अभयं नक्तमभयमं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

[47]. ऐत० ब्रा०, 12.4; बौ० धर्म०, 2.10.17.29

[48]. अथर्व०, 18.1.7 : .....मा जीवेभ्यः प्रमदः .....।

[49]. ऋ० 10.191.2-4; अथर्व०, 6.64.1-3

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।

समानं मन्त्रभिः मन्त्रये वः समानेन नो हविषा जुहोमि।

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

[50]. अथर्व०, 3.30.1-7

[51]. यजु०, 34.1-6 .....तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

[52]. यजु०, 5.82.5 : विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आ सुव ।। शुक्ल०, यजु०, 30.3 ।

[53]. अथर्व०, 19.62.1 : प्रिय मा कृण देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रिय सर्वस्व पश्यत उत भवाति नः पुरः ।

[54]. ऋ० 2.41.11; अथर्व०, 20.20.6: भद्रं भवाति नः पुरः ।

[55]. ऋ०, 8.58.2 : एकं वा इदं वि बभूव सर्वम् । यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
यत्र विश्व भवत्येकरूपम् ।

[56]. ऋ०, 5.51.15 : स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्यचन्द्रमसाविव ।

[57]. ऋ०, 10.65.11 : कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

[58]. अथर्व०, 20-20.6

[59]. ऋ०, 10.82.6 : यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः वही, 1.164.2; अथर्व०, 9.9.11; वही, 12.3.3 आदि उनके स्थल एवं यजु०, 40.3; असुर्या नाम ते लोकाः, अथर्व०, 12.3.20 : त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन, आदि स्थल द्रष्टव्य है ।

[60]. यजु० 40.1

[61]. ऋग्वेद, 2.33.15

[62]. यजु०, 40.6-7: यस्तु सर्वाणिभूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।